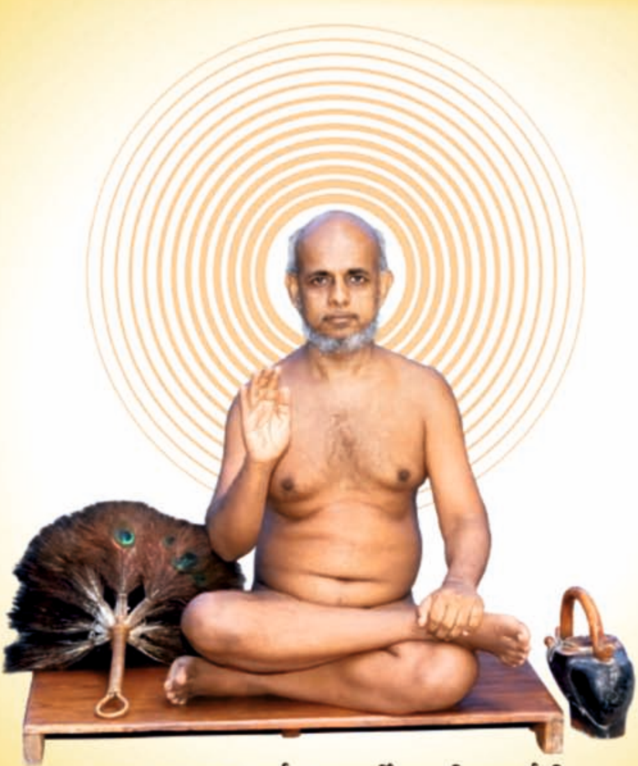

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

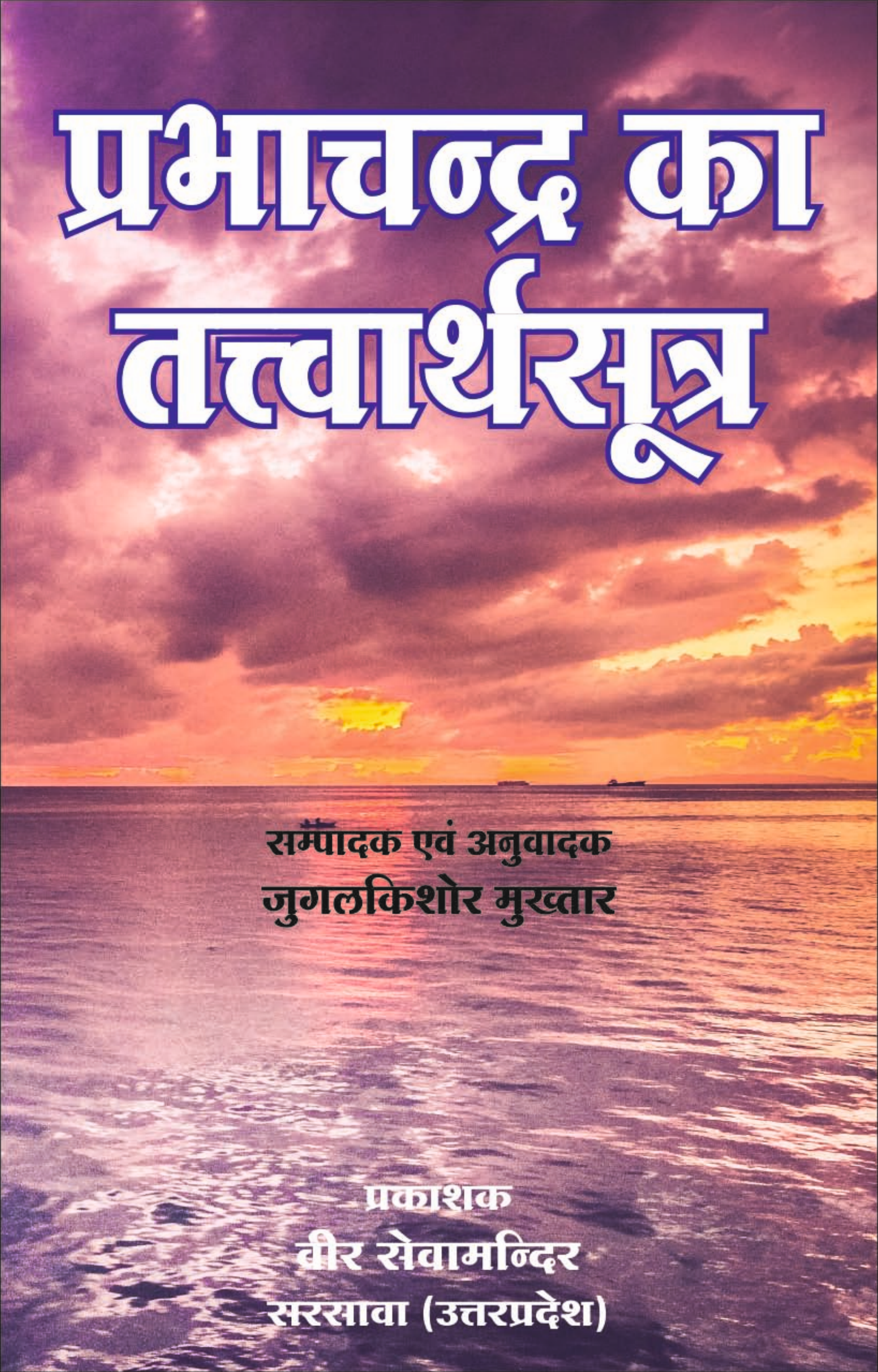

प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र

सम्पादक एवं अनुवादक

जुगलकिशोर मुख्तार

प्रकाशक

वीर सेवामन्दिर

सरसावा (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र

अनुवादादि—सहित

सम्पादक और अनुवादक

जुगलकिशोर मुख़्तार, 'युगवीर'

(ग्रन्थपरीक्षा ४ भाग, स्वामी समन्तभद्र, जिनपूजाधिकारमीमांसा, उपासनातत्त्व, विवाहसमुद्देश्य, विवाहक्षेत्रप्रकाश, जैनाचार्यों का शासनभेद,वीरपुष्पाञ्जलि, हम दुखी क्यों हैं, मेरी भावना, अनित्यभावना, महावीर संदेश, सिद्धिसोपान आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता तथा अनेकान्तादि पत्रों के सम्पादक)

सरसावा जि. सहारनपुर

प्रकाशक

वीर—सेवा—मन्दिर

सरसावा जि. सहारनपुर

प्रथमावृत्ति १००० प्रति	ज्येष्ठ, वीर निर्वाण सं. २४७० विक्रम संवत् २००१ मई १९४४

पुस्तकानुक्रम

विषय **पृष्ठ**

१. प्राक्कथन
२. प्रस्तावना
३. प्रभाचन्द्रीय—तत्त्वार्थसूत्र का मूल—सूत्रपाठ
४. प्रभाचन्द्र का तत्त्वार्थसूत्र (सानुवाद—व्याख्या)

प्राक्कथन

श्री प्रभाचन्द्राचार्य का यह तत्त्वार्थसूत्र उपलब्ध होने के बाद सबसे पहले— आज से कोई चार वर्ष पूर्व मेरे द्वारा सम्पादित और अनुवादित होकर अनेकान्त के तृतीय वर्ष की किरण नं. ६ और ७ में प्रकाशित हुआ था। उसी वक्त से कितने ही सज्जनों ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि इसे पुस्तकाकार में अलग छपाया जाय; परन्तु अनेक कारणों से अब तक छपाने का अवसर न मिल सका। अब इसे वीर—सेवा—मन्दिर की 'प्रकीर्णक पुस्तकमाला' में कुछ संशोधनादि के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

यहाँ पर मैं इतना और भी प्रकट कर देना चाहता हूँ कि अनेकान्त के उक्त प्रकाशन को लेकर भारतीय महाविद्यालय, कलकत्ता ने पं. ईश्वरचन्द नाम के किसी बंगाली विद्वान् से इस पर एक टीका संस्कृत और बंगला में लिखाई है और उसे साहू शान्तिप्रसाद जी के द्रव्य से छपवाया है, ऐसा मुझे हाल में एक मित्रमहोदय के पत्र से मालूम हुआ। साथ ही, यह भी मालूम हुआ कि उक्त विद्यालय की तरफ से इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित होने वाला है।

इधर 'सन्मति—साहित्य—संदन' वर्धा ने इस तत्त्वार्थ सूत्र को मेरे अनुवाद मात्र के साथ अपनी 'सन्मति—पुस्तकमाला' में प्रथम पुस्तक के तौर पर प्रकाशित करने की अनुमति चाही। यद्यपि मुझे यह इष्ट नहीं था कि यह पुस्तक मेरी व्याख्या और प्रस्तावना को छोड़कर मात्र मेरे अनुवाद के साथ छपाई जावे, फिर भी मैंने यह देखकर कि उक्त साहित्य सदन की बढ़ती हुई इच्छा में व्याघात उत्पन्न न होवे, उसे अनुमति दे दी। तदनुसार हाल में ही यह सूत्र अनुवादमात्र के साथ उधर से प्रकाशित हो गया है।

इन सब बातों से प्रकट है कि समाज में इस तत्त्वार्थ सूत्र के पढ़ने की रुचि बढ़ रही है और यह एक दिन संक्षेप—प्रिय जनता के हृदय में अच्छा स्थान प्राप्त करेगा।

प्रस्तावना

अभी तक हम उमास्वाति या उमास्वामी आचार्य के तत्त्वार्थसूत्र को ही जानते हैं– 'तत्त्वार्थसूत्र' नाम से प्रायः उसी की प्रसिद्धि है; परन्तु हाल में एक–दूसरा पुरातन तत्त्वार्थसूत्र भी उपलब्ध हुआ है, जिसके कर्ता आचार्य प्रभाचन्द्र हैं। ग्रन्थ की सन्धियों में प्रभाचन्द्राचार्य के साथ 'बृहत्' विशेषण लगा हुआ है, जिससे यह ध्वनित होता है कि प्रकृत ग्रन्थ बड़े प्रभाचन्द्र का बनाया हुआ है। प्रभाचन्द्र नाम के अनेक आचार्य हो गये हैं।[1] बड़े प्रभाचन्द्र आम तौर पर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'न्यायकुमुदचन्द्र' के कर्ता समझे जाते हैं; परन्तु इनसे भी पहले प्रभाचन्द्र नाम के कुछ आचार्य हुए हैं, जिनमें से एक तो परलुरु–निवासी 'विनयनन्दी' आचार्य के शिष्य थे और जिन्हें चालुक्य राजा 'कीर्तिवर्मा' प्रथम ने एक दान दिया था।[2] ये आचार्य विक्रम की छठी और सातवीं शताब्दी के विद्वान् थे; क्योंकि उक्त कीर्तिवर्मा का अस्तित्व समय शक सं. ४८९ (वि. स. ६२४) पाया जाता है। दूसरे प्रभाचन्द्र वे हैं, जिनका श्री पूज्यपादाचार्यकृत 'जैनेन्द्र' व्याकरण के '**रात्रेः कृति प्रभाचन्द्रस्य**' इस सूत्र में उल्लेख मिलता है और इसलिए जो विक्रम की छठी शताब्दी से पहले हुए हैं; क्योंकि आचार्य पूज्यपाद का समय विक्रम की छठी शताब्दी सुनिश्चित है और तीसरे प्रभाचन्द्र वे हैं, जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोल के प्रथम शिलालेख में पाया जाता है और जिनकी बाबत यह कहा जाता है कि वे भद्रबाहु श्रुतकेवली के दीक्षित शिष्य सम्राट् 'चन्द्रगुप्त' थे। इनका समय विक्रम सं. से भी कोई तीन सौ वर्ष पहले का है। तब यह ग्रन्थ कौन से बड़े प्रभाचन्द्राचार्य की कृति है, यह बात निश्चित रूप से अभी नहीं कही जा सकती। इसके लिए विशेष खोज होने की जरूरत है। फिर भी इतना तो कह सकते हैं कि यह भद्रबाहु श्रुतकेवली के शिष्य प्रभाचन्द्र की कृति तो नहीं है; क्योंकि उनके द्वारा किसी भी ग्रन्थ–रचना के होने का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ग्रन्थप्रति और उसकी प्राप्ति

[1] देखो– माणिक्यचन्द्र ग्रन्थमाला में प्रकाशित रत्नकरण्डश्रावकाचार की प्रस्तावना, पृ. ५७ से ६६ तक।

[2] देखो– 'साउथ इण्डियन जैनिज्म', भाग दूसरा, पृ. ८८।

उक्त तत्त्वार्थसूत्र की यह उपलब्ध प्रति पौने दस इंच चौड़े आकार के आठ पत्रों पर है। प्रथम पत्र का पहला और अन्तिम पत्र का दूसरा पृष्ठ खाली है और इसतरह ग्रन्थ की पृष्ठ–संख्या १४ है। प्रत्येक पृष्ठ पर ५ पंक्तियाँ हैं; परन्तु अन्त के पृष्ठ पर ४ पंक्तियाँ होने से कुल पंक्ति–संख्या ६९ होती है। प्रति पंक्ति अक्षर–संख्या २० के करीब है और इसलिए ग्रन्थ की श्लोक संख्या (३२ अक्षरों के परिमाण से) ४४ के करीब बैठती है।

कागज देशी साधारण कुछ पतला और खुर्दरा–सा लगा है। लिखाई मोटे अक्षरों में है और उसमें कहीं–कहीं स्वारादि–संधि–सूचक संकेतचिह्न, पदों की विभिन्नता–सूचक चिह्न तथा संख्या–सूचक अंक भी बारीक टाइप में (लघु–आकार में) अक्षरों के ऊपर की ओर लगाये गये हैं।

टिप्पणी एक स्थान को छोड़कर और कहीं भी नहीं है, और वह है ''**त्रिविधा भोगभूमय:**'' सूत्र पर ''जघन्य १ मध्य २ उत्कृष्ट ३'' के रूप में, जो प्राय: प्रतिलिपि करने वाले ही हाथ की लिखी हुई जान पड़ती है और इस बात को सूचित करती है कि जिस प्रति पर से यह प्रति उतारी गई है, सम्भवत: उसमें भी वह इसी रूप में होगी।

इस प्रति में अनुस्वार को कहीं भी पंचमाक्षर नहीं किया गया है। ओकार की आकृति 'उ' और औकार की 'ऊ' दी है।

ग्रन्थप्रति यद्यपि अधिकांश में शुद्ध है, फिर भी उसमें कुछ साधारण महत्त्व की अशुद्धियाँ भी पाई जाती हैं। व–ब का भेद तो बहुत ही कम रक्खा हुआ जान पड़ता है, कहीं–कहीं तो इन अक्षरों का प्रयोग ठीक हुआ है और कहीं वकार की जगह बकार और बकार की जगह वकार का प्रयोग कर दिया गया है जैसे– बिधो, बिध: द्रव्य, विग्रहा, देब्य:, बर्षाणि, बिधा, चतुर्बिंशति, बैमानिका, बि००घ्न, बिरति, बिंधं, पंचबिन्शति, अष्टाबिंशति, ज्ञानावरण, बिंशति, संबर: और विरचिते इनमें सर्वत्र 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग हुआ है और जंवू वह्मालया तथा वहु, इन शब्दों में 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग हुआ है, जो अशुद्ध है और यह सब प्राय:

लिपिकार की नित्य बोलचाल के अभ्यास से सम्बन्ध रखता हुआ जान पड़ता है।

ग्रन्थप्रति के अन्त में यद्यपि लिपि—सम्वत् दिया हुआ नहीं है, फिर भी यह प्रति अपने कागज की स्थिति और लिखावट आदि पर से २५०—३०० वर्ष से कम की लिखी हुई मालूम नहीं होती। इसे पण्डित रतनलाल ने कोटषावदा में लिखा है, जैसा कि इसकी निम्न अन्तिम पंक्ति से प्रकट है—

''पण्डित रतनलालेन लिषितं कोटषावदामध्ये सम्पूर्णं जात:''

मालूम नहीं यह 'कोटषावदा' स्थान कहाँ पर स्थित है; परन्तु इस ग्रन्थ प्रति की प्राप्ति वर्तमान में कोटा रियासत से हुई है। कोटा में भाई केसरीमल जी एक प्रमुख खण्डेलवाल जैन तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं, उनके पास रामपुर जि. सहारनपुर निवासी बाबू कौशलप्रसाद जी ने जो आजकल सहारनपुर में भारत आयुर्वेदिक कैमिकल्स के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं, यह ग्रन्थ देखा और इसे एक अपूर्व चीज समझकर उनके पास ले आए तथा विशेष जाँच पड़ताल एवं परिचयादि के लिए मेरे सुपुर्द किया, जिसके लिए मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ।

भाई केसरीमल जी ने इस ग्रन्थ की प्राप्ति का जो इतिहास बा. कौशलप्रसाद जी को बतलाया, उससे मालूम हुआ कि 'कोटा में भट्टारक की एक गद्दी थी, उस गद्दी पर दुर्भाग्य से एक ऐसा ही आदमी आ गया, जिसने वहाँ का सारा शास्त्र भण्डार रद्दी में बेच दिया। कुछ दिन पहले केसरीमल जी ने इसप्रकार की रद्दी की एक बोरी एक मुसलमान बोहरे के यहाँ देखी और उसे आठ आने में खरीद लिया। उसी बोरी में से इस ग्रन्थरत्न की प्राप्ति हुई है।' ग्रन्थ—प्राप्ति की यह छोटी—सी घटना बड़ी ही हृदयद्रावक है और इससे जैनियों के शास्त्र भण्डारों की अव्यवस्था, अपात्रों के हाथ में उनकी सत्ता और साथ ही अनोखी श्रुतभक्ति पर दो आँसू बहाये बिना नहीं रहा जाता। जैनियों की लापरवाही और ग्रन्थों की बेदरकारी के कारण न मालूम कितने ग्रन्थरत्न पंसारियों की दुकानों पर पुड़ियाओं में बँध—बँध कर नष्ट हो चुके हैं। कितने ही ग्रन्थों का उल्लेख तो मिलता है; परन्तु वे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं

हो रहे हैं। इस विषय में दिगम्बर समाज सबसे अधिक अपराधी है, उसकी गफलत अब तक भी दूर नहीं हुई और वह आज भी अपने ग्रन्थों की खोज और उनके उद्धार के लिए कोई व्यवस्थित प्रयत्न नहीं कर रही है और तो क्या, दिगम्बर ग्रन्थों की कोई अच्छी व्यवस्थित सूची तक भी वह अब तक तैय्यार कराने में समर्थ नहीं हो सका; जबकि श्वेताम्बर समाज अपने ग्रन्थों की ऐसी अनेक विशालकाय–सूचियाँ प्रकट कर चुका है। जिनवाणी माता की भक्ति का गीत गाने वालों और उसे नित्य ही अर्घ चढ़ाने वालों के लिए ये सब बातें निःसन्देह बड़ी ही लज्जा का विषय हैं। उन्हें इन पर ध्यान देकर शीघ्र ही अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए, ऐसा कोई व्यवसिथत प्रयत्न करना चाहिए, जिससे शीघ्र ही लुप्तप्राय जैन ग्रन्थों की खोज का काम ज़ोर के साथ चलाया जा सके, खोजे हुए ग्रन्थों का उद्धार हो सके और सम्पूर्ण जैन ग्रन्थों की एक मुकम्मल तथा सुव्यवस्थित सूची तैयार हो सके, अस्तु।

अब मैं मूल ग्रन्थ को अनुवाद के साथ रखकर उसका पूरा परिचय करा देना चाहता हूँ; परन्तु ऐसा करने से पहले इतना और भी बतला देना चाहता हूँ कि यह ग्रन्थ आकार में छोटा होने पर भी उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र की तरह दश अध्यायों में विभक्त है, मूल विषय भी इसका उसी के समान मोक्षमार्ग का प्रतिपादन है और उसका क्रम भी प्रायः एक ही जैसा है– कहीं–कहीं पर थोड़ा– सा कुछ विशेष जरूर पाया जाता है, जिसे यथावसर सूचित कर दिया गया है। इन अध्यायों में सूत्रों की संख्या क्रमशः १५, १२, १८, ६, ११, १४, ११, ८, ७, ५ है और इस तरह कुल सूत्र १०७ हैं। इस तत्त्वार्थसूत्र में दश अध्याय होने के कारण इसे 'दशसूत्र' नाम भी दिया गया है– उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र को भी 'दशसूत्र' कहा जाता है, और यह नाम ग्रन्थ की प्रथम पंक्ति में ही, उसका लिखना प्रारम्भ करते हुए, 'अथ' और 'लिख्यते' पदों के मध्य में दिया है। ग्रन्थ के अन्त में १०वीं सन्धि (पुष्पिका) के अनन्तर **'इति'** और **'समाप्तं'** पदों के मध्य में इसे **'जिनकल्पी सूत्र'** भी लिखा है। इसप्रकार ग्रन्थ प्रति के आदि, मध्य और अन्त में इस सूत्रग्रन्थ के क्रमशः दशसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र और जिनकल्पीसूत्र, ऐसे तीन नाम दिये हैं। पिछला नाम अपनी खास विशेषता रखता है और उसने बा. कौशलप्रसाद जी को

इस ग्रन्थ को कोटा से लाने के लिए और भी अधिक प्रेरित किया है। हाँ, मात्र १०वीं सन्धि में 'तत्त्वार्थसूत्र' के स्थान पर 'तत्त्वार्थसारसूत्र' ऐसा नामोल्लेख भी है, जिसका यह आशय होता है कि यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ–विषय का सारभूत ग्रन्थ है अथवा इस सूत्र में तत्त्वार्थशास्त्र का सार खींचा गया है। पिछले आशय से यह भी ध्वनित हो सकता है कि इस ग्रन्थ में सम्भवत: उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र का ही सार खींचा गया है। ग्रन्थ–प्रकृति और उसके अर्थ सादृश्य को देखते हुए, यद्यपि यह बात कुछ असंगत मालूम नहीं होती, बल्कि अधिकतर झुकाव उसके मानने की ओर होता है; फिर भी ९ संन्धियों में 'सार' शब्द का प्रयोन न होने से १०वीं सन्धि में उसके प्रयोग को प्रक्षिप्त भी कहा जा सकता है। कुछ भी हो, अभी ये सब बातें विशेष अनुसन्धान से सम्बन्ध रखती हैं और इसके लिए ग्रन्थ की दूसरी प्रतियों को भी खोजने की जरूरत है। साथ ही, यह भी मालूम होना जरूरी है कि इस सूत्रग्रन्थ पर कोई टीका–टिप्पणी भी लिखी गई या नहीं– जिसके लिखे जाने की बहुत बड़ी सम्भावना है। यदि कोई टीका–टिप्पणी उपलब्ध हो, तो उसे भी विशेष परिचयादि के द्वारा प्रकाश में लाना चाहिए।

फिर भी इस ग्रन्थ के विषय में इतना कह देने में तो कोई आपत्ति मालूम नहीं होती कि इसके सूत्रअर्थ गौरव को लिए होने पर भी आकार में छोटे, सुगम, कण्ठ करने तथा याद रखने में आसान हैं और उनसे तत्त्वार्थशास्त्र अथवा मोक्षशास्त्र का मूल विषय सूचनारूप में संक्षेपत: सामने आ जाता है।

एक बात और भी प्रकट कर देने की है और वह यह कि इस सूत्रग्रन्थ के शुरू में प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध को व्यक्त करता हुआ एक पद्य मंगलाचरण का है; परन्तु अन्त में ग्रन्थ की समाप्ति आदि का सूचक कोई पद्य नहीं है। ऐसे गद्यात्मक सूत्रग्रन्थों में जिनका प्रारम्भ मंगलाचरणादि के रूप में किसी पद्य–द्वारा होता है, उनके अन्त में कोई पद्य समाप्ति आदि का जरूर होता है, ऐसा अक्सर देखने में आया है। उदाहरण के लिए परीक्षामुखसूत्र, न्यायदीपिका और राजवार्तिक को ले सकते हैं। इन ग्रन्थों में आदि के समान अन्त में भी एक पद्य पाया जाता है। जिन ग्रन्थ–प्रतियों में वह उपलब्ध नहीं होता, उनमें वह लिखने से छूट गया है, जैसे कि

न्यायदीपिका और राजवार्तिक की मुद्रित प्रतियों में अन्त का पद्य छूट गया है, उसे दूसरी हस्तलिखित प्रतियों पर से खोजकर प्रकट किया जा चुका है।[3] ऐसी स्थिति होते हुए इस सूत्र के अन्त में भी कम से कम एक पद्य के होने की बहुत बड़ी सम्भावना है। मेरे ख्याल से वह पद्य इस ग्रन्थ प्रति में अथवा जिस पर से यह प्रति की गई है उसमें छूट गया है। उसके सामने आने पर और भी कुछ बातो पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है और इसलिए इस ग्रन्थ की दूसरी प्रतियों को खोजने की और भी ज्यादा जरूरत है। आशा है इसके लिए साहित्य–प्रेमी विद्वान् अपने अपने यहाँ के शास्त्रभण्डारों को जरूर ही खोजने का प्रयत्न करेंगे और अपनी खोज के परिणाम से मुझे शीघ्र ही सूचित कर अनुगृहीत करेंगे।

मूलग्रन्थ और उसका अनुवादिक

उक्त प्रति से मूल सूत्रादि को उद्धृत करते हुए जहाँ मूल का पाठ स्पष्टतया अशुद्ध जान पड़ा है, वहाँ उसके स्थान पर वह पाठ दे दिया गया है, जो अपने को शुद्ध प्रतीत हुआ है और ग्रन्थ प्रति में पाये जाने वाले अशुद्ध पाठ को फुटनोट में दिखला दिया है, जिससे वस्तु स्थिति के ठीक समझने में कोई प्रकार का भ्रम न रहे और न मूल सूत्रों के पढ़ने तथा समझने में कोई दिक्कत ही उपस्थित होवे; परन्तु वकार के स्थान पर बकार और बकार के स्थान पर वकार बनाने की जिन अशुद्धियों को ऊपर सूचित किया जा चुका है, उन्हें फुटनोटों में दिखलाने की जरूरत नहीं समझी गई। इसी तरह सन्धि तथा पद–विभिन्नतादि के संकेतचिह्नों को भी देने की जरूरत नहीं समझी गई। इसके अतिरिक्त जो अक्षर सूत्रों में छूटे हुए जान पड़े हैं, उन्हें सूत्रों के साथ ही () इसप्रकार के कोष्ठक के भीतर रख दिया है और जो पाठ अधिक सम्भाव्य प्रतीत हुए हैं उन्हें प्रश्नांक के साथ (.....?) ऐसे कोष्ठक में दे दिया गया है पाई (।), दो पाई (।।), के विराम चिह्न ग्रन्थ में लगे हुए नही हैं; परन्तु उनके लिए स्थान छूटा हुआ है, उन्हें भी यहाँ दे दिया है साथ ही वाक्य के अन्त में आए हुए अनुस्वार को 'म्' के रूप में रख दिया है और इसतरह मूल ग्रन्थ को उसके असली

---

[3] देखो– प्रथम वर्ष के 'अनेकान्त' की ५वीं किरण में 'पुरानी बातों की खोज' शीर्षक लेख का नं. १२, १३, पृ. २७२।

रूप में पाठकों के सामने रखने का भरसक प्रयत्न किया गया है; फिर भी यदि कोई अशुद्धियाँ रह गई हों तो विज्ञ पाठक सूचित करने की कृपा करें, जिससे उनका सुधार हो सके।

अनुवाद को मूलसूत्रादि के अनन्तर अनुवाद के रूप में ही रक्खा गया है। व्याख्यादि के रूप में नहीं और उसे भिन्न टाइप द्वारा एक ही पैराग्राफ में सिंगल इनवर्टेड कामाज़ के भीतर दे दिया गया है, जिससे मूल को मूल के रूप में ही समझा जा सके। जहाँ कहीं विशेष व्याख्या, स्पष्टीकरण अथवा तुलना की जरूरत पड़ी है वहाँ उस सबको अनुवाद के अनन्तर भिन्न पैराग्राफों में अलग दे दिया है।

इसप्रकार यह मूल ग्रन्थ और उसके अनुवादादि को देने की पद्धति है, जिसे यहाँ अपनाया गया है।

ग्रन्थारम्भ से पूर्व का अंश

।ऐं।। ॐ नमः सिद्धं। अथ दशसूत्रं[4] लिख्यते।

'ऐं, ॐ, सिद्ध को नमस्कार। यहाँ (अथवा अब) दशसूत्र लिखा जाता है।'

यह प्रायः लिपिकर्ता लेखक का मंगलाचरण के साथ ग्रन्थ का नामोल्लेख पूर्वक उसके लिखने की प्रतिज्ञा एवं सूचना का वाक्य है। हो सकता हे कि यह वाक्य प्रकृत ग्रन्थ प्रति के लेखक पं. रतनलाल की खुद की कृति न हो, बल्कि उस ग्रन्थ प्रति में ही इस रूप से लिखा हो, जिस पर से उन्होंने यह प्रति उतारी है। मूल ग्रन्थ के मंगलाचरणादि के साथ इसका सम्बन्ध नहीं है।

जुगलकिशोर मुख़्तार

वीर–सेवा–मन्दिर
सरसावा जि. सहारनपुर

[4] ग्रन्थप्रति में 'दशसूत्र' ऐसा अशुद्ध पाठ है।

प्रभाचन्द्रीय—तत्त्वार्थसूत्र का मूल—सूत्रपाठ

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः।
आविरासीद्यतो वन्दे तमहं वीरमच्युतम्।।१।।

सम्यग्दर्शनावगमवृत्तानि मोक्षहेतुः।।१।। जीवादिसप्ततत्त्वम्।।२।। तदर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।३।। तदुत्पत्तिर्द्विधा।।४।। नामादिना तन्न्यासः।।५।। प्रमाणे द्वे।।६।। नयाः सप्त।।७।। तैरधिगमस्तत्त्वानाम्।।८।। सदादिभिश्च।।९।। मत्यादीनि ज्ञानानि।।१०।। क्षयोपशम—(क्षय) हेतवः।।११।। षड्विधोऽवधिः।।१२।। द्विविधो मनःपर्ययः।।१३।। अखण्डं केवलम्।।१४।। समयं समयमेकत्र चत्वारि।।१५।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः।।१।।

जीवस्य पञ्च भावाः।।१।। उपयोगस्तल्लक्षणम्।।२।। स द्विविधः।।३।। द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः।।४।। शेषाः स्थावराः।।५।। द्रव्यभावभेदादिन्द्रियं द्विप्रकारम्।।६।। विग्रहाद्या गतयः।।७।। सचित्तादयो योनयः।।८।। औदारिकादीनि शरीराणि।।९।। एकस्मिन्नात्मन्याचतुर्भ्यः।।१०।। आहारकं प्रमत्त (संयत) स्यैव।।११।। तीर्थेश—देव—नारक—भोगभुवोऽखण्डायुषः।।१२।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

रत्नप्रभाद्याः सप्तभूमयः।। १।। तासु नारकाः सपञ्चदुःखा।।२।। जम्बूद्वीप—लवणोदादयोऽसंख्येयद्वीपोदधयः।।३।। तन्मध्ये लक्षयोजनप्रमः सचूलिको मेरुः।।४।। हिमवत्प्रमुखाः षट् कुलनगाः।।५।। तेषु पद्मादयो ह्रदाः।।६।। तन्मध्ये श्र्यादयो देव्यः।।७।। तेभ्यो गंगादयश्चतुर्दशमहानद्यः।।८।। भरतादीनि वर्षाणि।।९।। त्रिविधा भोगभूमयः।।१०।। भरतैरावतेषु षट्कालाः।।११।। विदेहेषु सन्ततश्चतुर्थः।।१२।। आर्या म्लेच्छाश्च नरः।।१३।। त्रिषष्ठि शलाकापुरुषाः।।१४।। एकादशरुद्राः।।

नवनारदाः।।१६।। चतुर्विंशतिकामदेवाः।।१७।। मनुष्यतिरश्चामुत्कृष्ट—जघन्यायुषी त्रिपल्योपपान्तर्मुहूर्ते।।१८।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

दशाऽष्टपञ्चभेद—भावन—व्यन्तर—ज्योतिष्काः।।१।। वैमानिका द्विविधाः कल्पजकल्पातीतभेदात्।।२।। सौधर्मादयः षोडशकल्पाः।।३।। ब्रह्मालयाः लौकान्तिकाः।।४।। ग्रैवेयकाद्या अकल्पाः।।५।। सामान्यतो देवनारकाणामुत्कृष्टेतरस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागराऽयुताब्दाः।।६।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

पञ्चास्तिकायाः।।१।। नित्याऽवस्थिताः।।२।। रूपिणः पुद्गलाः।।३।। धर्मादेरक्रियत्वम्।।४।। जीवादेर्लोकाकाशेऽवगाहः।।५।। सत्त्वं द्रव्यलक्षणम्।।६।। उत्पादादियुक्तं सत्।।७।। सह—क्रम—भाविगुण—पर्ययवद्द्रव्यम्।।८।। कालश्च।।९।। अनन्तसमयश्च।।१०।। गुणानामगुणत्वम्।।११।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः।।५।।

त्रिकरणैः कर्म योगः।।१।। प्रशस्ताप्रशस्तौ।।२।। पुण्यपापयोः (हेतू)।। गुरुनिन्हवादयो ज्ञान—दर्शनाऽऽवरणयोः।।४।। दुःखव्रत्यनुकम्पाद्या असाता—सातयोः।।५।। केवल्यादिविवादो (द्यवर्णवादो) दर्शनमोहस्य।।६।। कषाय—जनित—तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।७।। बह्वारम्भपरिग्रहाद्या नारकाद्याऽऽयुष्कहेतवः।।८।। योगवक्रताद्या अशुभनाम्नः।।९।। तद्वैपरीत्यं शुभस्य।।१०।। दर्शनविशुद्धयादि षोडशभावनास्तीर्थकरत्वस्य।।११।। आत्मविकत्थनाद्या नीचैर्गोत्रस्य।।१२।। तद्वयत्ययो महतः।।१३।। दानादिविघ्नकरणमन्तरायस्य।।१४।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

हिंसादि—पञ्चविरतिर्व्रतम्।।१।। महाऽणुभेदेन तद्द्विविधम्।।२।। तद्दार्ढ्याय भावनाः पञ्चविंशतिः।।३।।

मैत्र्यादयश्चतस्रः।।४।। श्रमणानामष्टाविंशतिर्मूलगुणाः।।५।। श्रावकाणामष्टौ।।६।। शीलसप्तकं च।।७।। शंकाद्याः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।।८।। बंधादयो व्रतानाम्।।९।। मित्रस्मृत्याद्याः सन्यासस्य।।१०।। स्व—पर—हिताय स्वस्यातिसर्जनं दानम्।।११।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोऽध्यायः।।७।।

मिथ्यादर्शनादयो बन्धहेतवः।।१।। चतुर्धा बन्धाः।।२।। मूलप्रकृतयोऽष्टौ।।३।। उत्तरा अष्टचत्वारिंशच्छतम्।।४।। ज्ञानावरणादि त्रयस्यान्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः पराध्या (परा?) स्थितिः।।५।। मोहनीयस्य सप्ततिः।।६।। त्रयस्त्रिंशदेवायुषः।।७।। नामगोत्रयोर्विंशतिः।।८।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

गुप्त्यादिना संवरः।।१।। तपसा निर्जराऽपि।।२।। उत्तमसंहननस्यान्तर्मुहूर्तावस्थायि ध्यानम्।।३।। तच्चतुर्विधम्।।४।। आद्ये संसारकारणे।।५।। परे मोक्षस्य।।६।। पुलाकाद्याः पंचनिर्ग्रन्थाः।।७।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे नवमोऽध्यायः।।९।।

मोहक्षये घातित्रयापनोदात्केवलम्।।९।। अशेषकर्मक्षये मोक्षः।।२।। तत ऊर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।।३।। ततो न गमनं धर्मास्तिकायाभावात्।।४।। क्षेत्रादिसिद्धभेदाः साध्याः।।५।।

इति श्रीवृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे दशमोऽध्यायः।।१०।।

इति जिनकल्पित—सूत्रं समाप्तम्

ॐ

श्रीप्रभाचन्द्राचार्य–विरचित

तत्त्वार्थसूत्र

(अनुवादादि–सहित)

पहला अध्याय

(मंगलाचरण)

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः।
आविरासीद्यतो वंदे तमहं वीरमच्युतम्।।१।।

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप सनातन मोक्ष–मार्ग जिससे–जिसके उपदेश से प्रकट हुआ है उस अच्युत वीर की मैं वन्दना करता हूँ।'

इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय मोक्षमार्ग है, उस सनातन मोक्षमार्ग का जिनके उपदेश द्वारा लोक में आविर्भाव हुआ है– पुनः प्रकटीकरण हुआ है– उन अमर अविनाशी वीरप्रभु का, उनके उस गुणविशेष के साथ वन्दन–स्मरण करके यहाँ यह व्यक्त किया गया है कि इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का सम्बन्ध वीरप्रभु उपदेश से है– उसी के अनुसार सब कुछ कथन किया गया है।

(सूत्रारम्भ)

सम्यग्दर्शनाऽवगमवृत्तानि मोक्षहेतुः।।१।।

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र– ये तीनों मिले हुए– मोक्ष का एक साधन हैं।'

यह सूत्र और उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र दोनों एक ही टाइप और एक ही आशय के हैं। अक्षर संख्या भी दोनों की १५–१५ ही है। वहाँ ज्ञान, चारित्र और मार्ग शब्दों का प्रयोग हुआ है, तब यहाँ उनके स्थान पर क्रमशः अवगम,

वृत्त और हेतु शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो समान अर्थ के ही द्योतक हैं।

जीवादि सप्ततत्त्वम्।।२।।

'जीव आदि सात तत्त्व हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे छह तत्त्वों के ग्रहण का निर्देश है; क्योंकि जैनागम में जीव सहित इन तत्त्वों की ही 'सप्ततत्त्व' संज्ञा है। यह सूत्र और उमास्वाति का चौथा सूत्र दोनों एकार्थ–वाचक हैं। उसमें जब सातों तत्त्वों के नाम दिये गये हैं, तब इसमें 'आदि' शब्द से शेष छह रूढ़ तत्त्वों का संग्रह किया गया है और इसलिए इसमें अक्षरों की संख्या अल्प हो गई है।

तदर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।३।।

'उनके सप्ततत्त्वों के अर्थ श्रद्धान को निश्चयरूप रुचि विशेष को सम्यग्दर्शन कहते हैं।'

यह उमास्वाति के द्वितीय सूत्र के साथ मिलता–जुलता है। दोनों की अक्षर संख्या भी समान है, वहाँ 'तत्त्वार्थश्रद्धानं' पद दिया है, तब यहाँ 'तदर्थश्रद्धानं' पद के द्वारा वही आशय व्यक्त किया गया है। भेद दोनों में कथनशैली का है। उमास्वाति ने सम्यग्दर्शन के लक्षण में प्रयुक्त हुए 'तत्त्व' शब्द को आगे जाकर स्पष्ट किया है और प्रभाचन्द्र ने पहले 'तत्त्व' को बतला कर फिर उसके अर्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन बतलाया है और इस तरह कथन का सरल मार्ग अंगीकार किया है। कथन का यह शैली–भेद आगे भी बराबर चलता रहा है।

तदुत्पत्तिर्द्विधा।।४।।

'उसकी–सम्यग्दर्शन की–उत्पत्ति दो प्रकार से है।'

यहाँ उन दो प्रकारों का आगमकथित निसर्ग और अधिगम भेदों का उल्लेख न करके उनकी मात्र सूचना की गई है; जबकि उमास्वाति ने 'तन्निसर्गादधिगमाद्वा' इस तृतीय सूत्र के द्वारा उनका स्पष्ट उल्लेख कर दिया है।

नामादिना तन्न्यासः।।५।।

'नाम आदि के द्वारा उनका— सम्यग्दर्शनादि का तथा जीवादि तत्त्वों का न्यास (निक्षेप) होता है— व्यवस्थापन और विभाजन किया जाता है।'

यहाँ 'आदि' शब्द से स्थापना, द्रव्य और भाव के ग्रहण का निर्देश है; क्योंकि आगम में न्यास अथवा निक्षेप के चार ही भेद किये गये हैं और वे षट्खण्डागमादि मूल ग्रन्थों में बहुत ही रूढ़ तथा प्रसिद्ध हैं और उनका बार—बार उल्लेख आया है और इसलिए इस सूत्र का भी वही आशय है, जो उमास्वाति के पाँचवें सूत्र '**नाम—स्थापना—द्रव्य—भाव—तस्तन्न्यासः**' का होता है।

प्रमाणे द्वे।।६।।

'प्रमाण दो हैं।'

यहाँ दो की संख्या का निर्देश करने से प्रमाण के आगम कथित प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों भेदों का संग्रह किया गया है। यह उमास्वाति के १०वें सूत्र ''तत्प्रमाणे'' के साथ मिलता—जुलता है; परन्तु दोनों की कथनशैली और कथनक्रम भिन्न है। इसमें प्रमाण के सर्वार्थसिद्धि—कथित 'स्वार्थ' और 'परार्थ' नाम के दो भेदों का भी समावेश हो जाता है।

नयाः सप्त।।७।।

'नय सात हैं।'

यहाँ सात की संख्या का निर्देश करने से नयों के आगम—कथित नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे सात भेदों का संग्रह किया गया है। उमास्वाति ने नयों का उल्लेख यद्यपि 'प्रमाणनयैरधिगमः' इस छठे सूत्र में किया है; परन्तु उनकी[5] सात संख्या और नामों का सूचक सूत्र प्रथम अध्याय के अन्त में दिया है। यहाँ दूसरा ही

---

[5] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ और उसके भाष्य में नयों की मूल संख्या नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द, ऐसे पाँच दी है, फिर नैगम के दो और शब्दनय के साम्प्रत, समभिरूढ़, एवंभूत ऐसे तीन भेद किये गये हैं और इस तरह नय के आठ भेद किये हैं; परन्तु पं. सुखलालजी अपनी तत्त्वार्थसूत्र की टीका में यह स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि जैनागमों और दिगम्बरीय ग्रन्थों की परम्परा उक्त सात नयों की ही है।

क्रम रक्खा गया है और उक्त छठे सूत्र के आशय का जो सूत्र यहाँ दिया है, वह इससे अगला आठवाँ सूत्र है।

तैरधिगमस्तत्त्वानाम्।।८।।

'उनके प्रमाणों तथा नयों के द्वारा तत्त्वों का विशेष ज्ञान होता है।'

इस सूत्र में 'प्रमाणनयैः' की जगह 'तैः' पद के प्रयोग से जहाँ सूत्र का लाघव हुआ है, वहाँ 'तत्त्वानाम्' पद कुछ अधिक जान पड़ता है। यह पद उमास्वाति के उक्त छठे सूत्र में नहीं है; फिर भी इस पद से अर्थ में स्पष्टता जरूर आ जाती है।

सदादिभिश्च।।९।।

'सत् आदि के द्वारा भी तत्त्वों का विशेष ज्ञान होता है।'

यहाँ 'आदि' शब्द से संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व नाम के सात अनुयोगद्वारों के ग्रहण का निर्देश है; क्योंकि सत्सहित इन अनुयोग द्वारों की आठ संख्या आगम में रूढ़ है— षट्खण्डागमादिक में इनका बहुत विस्तार के साथ वर्णन है। इस सूत्र का और उमास्वाति के ''सत्संख्यादि' सूत्र नं. ८ का एक ही आशय है।

मत्यादीनि ज्ञानानि।।१०।।[6]

'मति आदिक ज्ञान हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द के द्वारा श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, इन चार ज्ञानों का संग्रह किया गया है; क्योंकि मति—ज्ञान को आदि लेकर ये ही पाँच ज्ञान आगम में वर्णित हैं।

क्षयोपशम (क्षय) हेतवः (तूनि)।।११।।

'मत्यादिक ज्ञान क्षयोपशम—क्षय—हेतुक हैं।'

---

[6] ग्रन्थप्रति में 'म' के स्थान पर 'स' बना है, जो लिपि की गलती है।

मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, ये चार ज्ञान तो मतिज्ञानावरणादि कर्म–प्रकृतियों के क्षयोपशम से होते हैं, इसलिए 'क्षयोपशमिक' कहलाते हैं और केवलज्ञान ज्ञानावरणादिघातियाकर्म–प्रकृतियों के क्षय से उत्पन्न होता है, इसलिए 'क्षायिक' कहा जाता है।

षड्विधोऽवधिः।।१२।।

'अवधिज्ञान छह भेदरूप है।'

यहाँ छह की सख्या का निर्देश करने से अवधिज्ञान के अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित ऐसे छह भेदों का ग्रहण किया गया है, जो सब क्षयोपशम के निमित्त से ही होते हैं। भवप्रत्यय अवधिज्ञान जो देव–नारकियों के लिए बतलाया गया है, वह भी क्षयोपशम के बिना नहीं होता और उक्त छह भेदों में उसका भी अन्तर्भाव हो जाता है, इसी से यहाँ उसका पृथक् रूप से ग्रहण करना नहीं पाया जाता। यह सूत्र उमास्वाति के **'क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषणां'** इस २२वें सूत्र के साथ मिलता–जुलता है।

द्विविधो मन:पर्ययः।।१३।।

'मन:पर्ययज्ञान दो भेदरूप है।'

यहाँ दो की संख्या के निर्देश द्वारा मन:पर्यय के ऋजुमति और विपुलमति इन दोनों प्रसिद्ध भेदों का संग्रह किया गया है और इसलिए इसका वही आशय है, जो उमास्वाति के '**ऋजुविपुलमती मन:पर्ययः**' इस सूत्र नं. २३ का होता है।

अखंडं केवलम्।।१४।।

'केवलज्ञान अखंड है– उसका कोई भेद–प्रभेद नहीं है।'

इस सूत्र के आशय का कोई सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है।

समयं[7]समयमेकत्र चत्वारि।।१५।।

'कभी—कभी एक जीव में युगपत् चार ज्ञान होते हैं।'

केवलज्ञान को छोड़कर शेष चार ज्ञान एक आत्मा में किसी समय युगपत् हो सकते हैं। इससे दो—तीन ज्ञानों का भी एक साथ होना ध्वनित होता है। दो एक साथ होंगे तो मति, श्रुत होंगे और तीन होंगे तो मति, श्रुत, अवधि अथवा मति, श्रुत और मन:पर्यय होंगे। एक ज्ञान केवलज्ञान ही होता है— उसके साथ में दूसरे ज्ञान नहीं रहते। यह सूत्र उमास्वाति के **'एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य:'** इस सूत्र के समकक्ष है और इसी जैसे आशय को लिए हुए है; परन्तु इसकी शब्द—रचना कुछ सन्दिग्ध—सी जान पड़ती है। सम्भव है कि **एकत्र चत्वारि'** के स्थान पर '**एकत्रैकाद्वित्रिचत्वारि**' ऐसा पाठ हो।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोध्याय:।।१।।

'इसप्रकार श्री बृहत् प्रभाचन्द्र—विरचित तत्त्वार्थसूत्र में पहला अध्याय समाप्त हुआ।'

दूसरा अध्याय

जीवस्य पंचभावा:।।१।।

'जीव के पाँच भाव होते हैं।'

यहाँ पाँच की संख्या का निर्देश करने से जीव के आगम—कथित औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ऐसे पाँच भावों का संग्रह किया गया है। उमास्वाति के दूसरे अध्याय का ''**औपशमिकक्षायिकौ**'' आदि प्रथम सूत्र भी जीव के पाँच भावों का प्रतिपादक है। उसमें पाँचों के नाम दिये हैं, जिससे वह बड़ा सूत्र हो गया है। आशय दोनों का प्राय: एक ही है।

उपयोगस्तल्लक्षणम्।।२।।

---

[7] ग्रन्थप्रति में 'समयं' के स्थान पर 'समय' बना हुआ है।

'जीव का लक्षण उपयोग है।'

यह सूत्र और उमास्वाति का 'उपयोगो लक्षणं' नाम का सूत्र एक ही अर्थ के वाचक हैं।

स द्विविधः।।३।।[8]
'वह (उपयोग) दो प्रकार का होता है।'

यहाँ दो की संख्या का निर्देश करने से उपयोग के आगमकथित दो मूल भेदों का संग्रह किया गया है– उत्तर भेदों का वैसा कोई निर्देश नहीं किया, जैसा कि उमास्वाति के ''स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः'' इस सूत्र नं. ९ में पाया जाता है।

'द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः।।४।।
'द्वीन्द्रियादिक जीव त्रस हैं।'

यहाँ 'आदिशब्द से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा संज्ञी–असंज्ञी के भेदरूप पंचेन्द्रिय जीवों के ग्रहण का निर्देश है। यह सूत्र और उमास्वाति का १४वाँ सूत्र अक्षरशः एक ही है।[9]

शेषाः[10]स्थावराः।।५।।
'शेष (एकेन्द्रिय) जीव स्थावर हैं।'

उमास्वाति के दिगम्बरीय सूत्रपाठ के '**पृथिव्यपतेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः**' सूत्र नं. १३ का जो आशय है वही इस सूत्र का है और इसलिए स्थावर जीव पृथ्वी आदि के भेद से पाँच प्रकार के हैं।

द्रव्यभावभेदादिंद्रियं द्विप्रकारम्।।६।।
'द्रव्य और भाव के भेद से इन्द्रिय के दो प्रकार हैं।'

---

8 ग्रन्थप्रति में 'सद्धि' के स्थान पर 'सद्द्धि दिया है, जो अशुद्ध है।

9 श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में १४वें सूत्र का रूप **'तेजोवायू द्वीन्द्रियादयश्चत्रसाः'** ऐसा दिया है; जिसके द्वारा अग्नि और वायुकाय के जीवों को भी त्रसों में परिगणित किया है।

10 ग्रन्थप्रति में विसर्गहीन 'शेषा' पाठ है, जो अशुद्ध है।

इस सूत्र में यद्यपि उमास्वाति के 'द्विविधानि' १६, :निर्वृत्युपरकरणे द्रव्येन्द्रियम्' १७, लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम' १८ इन तीन सूत्रों के आशयों का समावेश है; परन्तु द्रव्येन्द्रिय ओर भावेन्द्रिय के भेदों को खोला नहीं है।

विग्रहाद्या गतय:।।७।।

'विग्रहा आदि गतियाँ हैं।'

यहाँ गतियों की कोई संख्या नहीं दी। मुख्यभेद दो हैं– (१) विग्रहा, (२) अविग्रहा। विग्रहा गति संसारी जीवों की और अविग्रहा संसारी तथा मुक्त दोनों की होती है। अविग्रहा को 'इषुगति' भी कहते हैं और 'विग्रहा' के तीन भेद किये जाते हैं– (१) पाणिमुक्ता, (२) लांगलिका, (३) गोमूत्रिका। आर्षग्रन्थों में इषुगति–सहित गति के चार भेद गिनाये हैं। यदि इन चारों का ही अभिप्राय यहाँ होता तो इस सूत्र का कुछ दूसरा ही रूप होता। अत: विग्रहा, अविग्रहा के अतिरिक्त गति के नरकगति, तिर्यंचगति, देवगति, मनुष्यगति –ऐसे जो चार भेद और किये जाते हैं। उनका भी समावेश इस सूत्र में हो सकता है। उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में इसप्रकार का कोई अलग सूत्र नहीं है– यों 'अविग्रहा जीवस्य, विग्रहवती च संसारिण: प्राक्चतुर्भ्य: एकसमयाऽविग्रहा' आदि सूत्रों में विग्रहादिगतियों का उल्लेख पाया ही जाता है।

सचित्तादयो योनय:।।८।।

'सचित्त आदि योनियाँ हैं।'

यहाँ सूत्र में यद्यपि योनियों की संख्या नहीं दी; परन्तु सचित्त योनि से जिनका प्रारम्भ होता है, उनकी संख्या आगम में नव है– ग्रन्थप्रति में 'योनय:' पद पर ९ का अंक भी दिया हुआ है। ऐसी हालत में उमास्वाति के 'सचित्त–शीत–संवृता: सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय:' इस सूत्र नं. ३२ का जो आशय है, वही इस सूत्र का आशय समझना चाहिए।

औदारिकादीनि शरीराणि।।९।।

'औदारिक आदि शरीर होते हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से वैक्रियक, अहारक, तैजस और कर्मण नाम के चार शरीरों के ग्रहण का संकेत है; क्योंकि औदारिक—सहित शरीरों के पाँच ही भेद आगम में पाये जाते हैं और इसलिए इस सूत्र का वही आशय है, जो उमास्वाति के 'औदारिक—वैक्रियिकाहारक तैजसकार्मणानि शरीराणि' इस सूत्र नं. ३६ का है।

एकस्मिन्नात्मन्याचतुर्भ्य:।।१०।।

'एक जीव में चार तक शरीर (एक साथ) होते हैं।८

यह सूत्र उमास्वाति के 'तदादीनिभाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्य:' इस सूत्र के साथ मिलता—जुलता है; परन्तु उमास्वाति के सूत्र में 'तदादीनि' पद के द्वार 'तैजस और कार्मण नाम के दो शरीरों को आदि लेकर' ऐसा जो कथन किया गया है और उसके द्वारा एक शरीर अलग नहीं होता ऐसा जो नियम किया गया है, वह स्पष्ट विधान यहाँ इस सूत्र से उपलब्ध नहीं होता।

आहारकं प्रमत्त (संयत) स्यैव।।११।।

'आहारक प्रमत्तसंयत के ही होता है।'

आहारक शरीर के लिए यह नियम है कि वह प्रमत्तसंयत नाम के छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के ही होता है अन्य के नहीं। उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में इसी आशय का सूत्र नं. ४९ पर है। उसमें आहारक शरीर के शुभ, विशुद्ध, अव्याघाति ऐसे तीन विशेषण दिये हैं। मूल बात आहारक शरीर के स्वामित्वनिर्देश की दोनों सूत्रों में एक ही है। श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में 'प्रमत्तसंयतस्यैव' के स्थान पर 'चतुर्दशपूर्वधरस्यैव' पाठ है और इसलिए वे चौदह पूर्वधारी (श्रुतकेवली) मुनि के ही आहारक शरीर का होना बतलाते हैं।

तीर्थेश—देव—नारक—भोगभुवोऽखंडायुष:[११]।।१२।।

'तीर्थंकर, देव, नारकी और भोगभूमिया अखण्ड आयु वाले होते हैं।'

---

[11] अखंडायुष:।

अकालमरण के द्वारा बद्ध आयु का बीच में खण्डित न होना 'अखण्डायु' कहलाता है। तीर्थंकरों आदि का अकालमरण नहीं होता, बाह्य निमित्तों को पाकर उनका आयु छिदता–भिदता अथवा परिवर्तनीय नहीं होता– वे कालक्रम से अपनी पूरी ही बद्धायु का भोग करते हैं। दूसरे मनुष्य तिर्यंचों के अखण्डायु होने का नियम नहीं– वे अखण्डायु हो भी सकते हैं और नहीं भी। यह सूत्र उमास्वाति के **'औपपादिकं चरमोत्तमदेहा[12]ऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः'** इस ५३वें सूत्र की अपेक्षा बहुत कुछ सरल, स्पष्ट तथा अल्पाक्षरी है, इसमें उक्त सूत्र–जैसी जटिलता नहीं है।

इति श्रीप्रभाचंद्र–विरचिते तत्त्वार्थसूत्रे

द्वितीयोध्यायः।।२।।

'इसप्रकार श्री प्रभाचंद्र–विरचित तत्त्वार्थसूत्र में दूसरा अध्याय समाप्त हुआ।'

तीसरा अध्याय

रत्नप्रभाद्याः सप्तभूमयः।।१।।

'रत्नप्रभा आदि सात भूमियाँ हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, महातमःप्रभा इन छह भूमियों का संग्रह किया गया है; क्योंकि आगम में रत्नप्रभा आदि को लेकर ये ही सब सात नरक–भूमियाँ वर्णित हैं। यह सूत्र उमास्वाति–तत्त्वार्थसूत्र के तृतीय अध्याय के प्रथम सूत्र के मूल आशय के साथ मिलता–जुलता है। उसमें 'घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः' और 'अधोऽधः' पदों के द्वारा इन नरक–भूमियों के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट एवं स्पष्ट कथन और भी किया है।

तासु नारकाः सपंचदुःखाः।।२।।

---

[12] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाः' ऐसा पाठ है, जिसके द्वारा सभी चरमशरीरी तथा उत्तम पुरुषों को अखण्डायु बतलाया है। उसमें भी यह द्वितीय अध्याय का अन्तिम सूत्र है; परन्तु इसका नम्बर वहाँ ५२ है।

'उन सातों भूमियों में नारकी जीव रहते हैं और वे पाँच प्रकार के दु:खों से युक्त होते हैं।'

नारकी जीव शारीरिक, स्वसंक्लेशपरिणामज (मानसिक), क्षेत्रस्वभावज, परस्परोदीरित और असुरोदीरित इन पाँच प्रकार के दु:खों से निरन्तर पीड़ित रहे हैं। स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जैसे ग्रन्थों में इन्हीं दुखों का वर्णन है। उमास्वाति के प्राय: २ से ५ तक के सूत्रों का आशय इसमें संनिहित जान पड़ता है।

जम्बूद्वीपलवणोदादयोऽसंख्येयद्वीपोदधय:।।३।।

'जम्बूद्वीप और लवणोदधि को आदि लेकर असंख्यात द्वीपसमुद्र हैं।'

यह सूत्र और उमास्वाति का 'जम्बूद्वीपलवणोदादय: शुभनामानो द्वीपसमुद्रा:' यह सूत्र नं. ७ दोनों एक ही आशय को लिए हुए हैं। एक में द्वीप–समुद्रों का 'शुभनामान:' विशेषण है तो दूसरे में 'असंख्येय' विशेषण है।

तन्मध्ये लक्ष्योजनप्रम: सचूलिको मेरु:।।४।।

'उन द्वीप–समुद्रों के मध्य में लाख योजन–प्रमाण वाला चूलिका सहित मेरु (पर्वत) है।'

उमास्वाति ने 'तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो' इत्यादि सूत्रो के द्वारा मेरुपर्वत को नाभिकी तरह मध्यस्थित बतलाते हुए उसका कोई परिमाण न देकर जम्बूद्वीप को लक्ष–योजन–प्रमाण विस्तार वाला बतलाया है, जबकि यहाँ जम्बूद्वीप का कोई परिमाण न देकर मेरु का ही परिमाण दिया है, जा कि चूलिका के परिमाण को साथ में शामिल करके है। जम्बूद्वीप और मेरुपर्वत दोनों ही एक–एक लाख योजन के हैं।

हिमवत्प्रमुखा: षट् कुलनगा:।।५।।

'हिमवान् को आदि लेकर षट् कुलाचल हैं।'

यहाँ छह की संख्या का निर्देश करने से 'प्रमुख' शब्द के द्वारा महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी शिखरी इन पाँच कुलाचनों का संग्रह किया गया है, क्योंकि आगम में

हिमवान्—सहित छह पर्वतों का वर्णन है, जो जम्बूद्वीपादिक में स्थित हैं। उमास्वाति ने ११वें सूत्र में उन सबका नाम सहित संग्रह किया है।

तेषु पद्मादयो ह्रदा:।।६।।

'उन कुलाचलों पर 'पद्म' आदि द्रह (तालाब) हैं।'

यहाँ 'आदि शब्द से महापद्म, तिगिछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के पाँच द्रहों का संग्रह किया गया है, जो शेष महाहिमवान् आदि कुलाचलों पर स्थित हैं और जिनका उमास्वाति ने अपने १४ वें 'पद्ममहापद्म' आदि सूत्र में उल्लेख किया है।

तन्मध्ये श्र्यादो देव्य:।।७।।

'उन द्रहों के मध्य में श्री आदि देवियाँ रहती हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से आगम—वर्णित ही— धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी नाम की पाँच देवियों का संग्रह किया गया है, जिन्हें उमास्वाति ने अपने १९वें सूत्र में द्रह स्थित कमलों में निवास करने वाली बतलाया है।

तेभ्यो[13]गंगादयश्चतुर्दशमहानद्य:।।८।।

'उन (द्रहों) से गंगादिक १४ महानदियाँ निकलती हैं।

यहाँ १४ की संख्या के निर्देश के साथ 'आदि' शब्द से आगमवर्णित सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा, इन १३ नदियों का संग्रह किया गया है। उमास्वाति ने अपने 'गंगासिन्धु' आदि सूत्र नं. २०[14] में इन सबका नामोल्लेख—पूर्वक संग्रह किया है। इसी से वह सूत्र बड़ा हो गया है।

भरतादीनि वर्षाणि।।९।।

---

[13] ग्रन्थप्रति में 'तस्माद्' पाठ है, जो अशुद्ध जान पड़ता है।

[14] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में यह सूत्र ही नहीं है।

'भरत आदि क्षेत्र हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नाम के छह क्षेत्रों का संग्रह किया गया है। षट् कुलाचलों से विभाजित होने के कारण जम्बूद्वीप के क्षेत्रों की संख्या सात होती है। यह सूत्र और उमास्वाति का १०वाँ **'भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतबर्षाः क्षेत्राणि'** सूत्र एक ही आशय के हैं।

त्रिविधा भोगभूमयः।।१०।।

'भोग–भूमियाँ तीन प्रकार की होती हैं।'

यहाँ जघन्य, मध्यम और उत्तम ऐसी तीन प्रकार की भोगभूमियों का निर्देश है। हैमवत–हैरण्यवत क्षेत्रों में जघन्य भोगभूमि, हरि–रम्यकक्षेत्रों में मध्यम भोगभूमि और विदेह क्षेत्र स्थित देवकुरु–उत्तरकुरु में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में यद्यपि इसप्रकार का कोई स्वतन्त्र सूत्र नहीं है; परन्तु उसके **'एकद्वित्रिपल्योपम'** आदि सूत्र नं. १९ और 'तथोत्तराः' नामक सूत्र नं. २०[१५] में यह सब आशय सन्निहित है।

भरतैरावतेषु षट्कालाः।।११।।

'भरत और ऐरावत नाम के क्षेत्रों में छह काल वर्तते हैं।'

इस सूत्र का प्रायः वही आशय है, जो उमास्वाति के **'भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्'** इस सूत्र नं. २७ का है।

विदेहेषु सन्ततश्चतुर्थः।।१२।।

'विदेहक्षेत्रों में सदा चौथा काल वर्तता है।'

इस आशय का कोई सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है। सर्वार्थसिद्धिकार ने **'विदेहेषु संख्येयकालाः'** सूत्र की

---

15 श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में ये दोनों ही सूत्र नहीं है।

व्याख्या करते हुए **'तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः'** इस व्याख्या के द्वारा वहाँ सदा चतुर्थ काल के होने को सूचित किया है।

आर्या म्लेच्छाश्च नरः।।१३।।

'मनुष्य आर्य और म्लेच्छ होते हैं।

यह सूत्र और उमास्वाति का 'आर्या म्लेच्छाश्च' सूत्र नं. ३६ एक ही आशय के हैं। इसमें नरः' पद 'नृ' शब्द का प्रथमा का बहुवचनान्तपद है, जो यहाँ अधिक नहीं; किन्तु कथन—क्रम को देखते हुए आवश्यक जान पड़ता है।

त्रिषष्ठिशलाकापुरुषाः।।१४।।

एकादशरुद्राः।।१५।।

नवनारदाः।।१६।।

चतुर्विंशतिकामदेवाः।।१७।।

'त्रेसठ शलाका पुरुष होते हैं।'

'ग्यारह रुद्र होते हैं।'

'नव नारद होते हैं।'

'चौबीस कामदेव होते हैं।'

इन चारों सूत्रों के आशय का कोई भी सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है।

मनुष्यतिरश्चामुत्कृष्ट—जघन्यायुषी त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते[१६]।।१८।।

'मनुष्य और तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य की है और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है।'

उमास्वाति के ''नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तमुहूर्ते'' और ''तिर्यग्योनिजानां च'' इन दो सूत्रों नं.३८, ३९ में जो बात कही गई है, वही यहाँ इस एक सूत्र में वर्णित है— अक्षर भी अधिक नहीं है।

---

[16] मुहर्त्तौं।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे
तृतीयोध्याय:।।३।।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र–विरचिते तत्त्वार्थसूत्र में तीसरा अध्याय समाप्त हुआ है।'

चौथा अध्याय

दशाऽष्टपंचभेदभावन–व्यन्तर–ज्योतिष्का:।।१।।

'भवनवासियों, व्यन्तरों और ज्योतिषियों के क्रमश: दश, आठ और पाँच भेद होते हैं।'

भवनवासी आदि देवों की यह भेद–गणना उमास्वाति के ''**दशाष्टपंचद्वादशविकल्पा: कल्पोपन्नपर्यन्ता:**' इस सूत्र नं. ३ में पाई जाती है।

वैमानिका द्विविधा:[१७] कल्पजकल्पातीत[१८]
भेदात्।।२।।

'वैमानिक (देव) कल्पज और कल्पातीत के भेद से दो प्रकार के होते हैं।'

इस सूत्र–विषय के लिए उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में 'वैमानिका:' और 'कल्पोपपन्ना: कल्पातीताश्च' ऐसे दो सूत्र पाये जाते हैं।

सौधर्मादय: षोडशकल्पा:।।३।।

'सौधर्म आदि सोलह कल्प हैं।'

इस सूत्र में कल्पों की संख्या १६ निर्दिष्ट करने से 'आदि' शब्द के द्वारा ईशान आदि उन १५ स्वर्गों का संग्रह किया गया है, जिनके नाम उमास्वाति के दिगम्बर पाठानुसार १९ वें सूत्र में दिये हैं।

---

[17] धा।
[18] ता।

ब्रह्मालया लौकान्तिका:[१९] **।।४।।**

'लौकान्तिक (देव) ब्रह्मकल्प के निवासी होते हैं।'

यह सूत्र और उमास्वाति का 'ब्रह्मलोकालया लोकान्तिका:' सूत्र प्राय: एक ही हैं।

ग्रैवेयकाद्या अकल्पा:।।५।।

'ग्रैवेयक आदि अकल्प हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्दों से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नाम के उन आगमोदित विमानों का संग्रह किया गया है, जिनका उमास्वाति के भी उक्त १९वें सूत्र में उल्लेख है। उमास्वाति ने भी **'प्राग्ग्रैवेयकेभ्य: कल्पा:'** इस सूत्र के द्वारा इन्हें 'अकल्प' सूचित किया है।

सामान्यतो देवनारकाणामुत्कृष्टेतरस्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरायुताब्दा:[२०] **।।६।।**

'सामान्यतया देव और नारकों की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर और जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की है।'

उमास्वाति ने 'दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्' इत्यादि अनेक सूत्रों में इसी आशय को वर्णित किया है। इस सूत्र का 'सामान्यत:' पद खास तौर से ध्यान देने योग्य है और उससे विशेषावस्था में किसी अपवाद के होने की भी सूचना मिलती है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे चतुर्थोऽध्याय:।।४।।

---

19 लोकान्तिका:।

20 'सागरप्रयुताब्दा:' यह ग्रन्थ प्रति का पाठ इसलिए ठीक नहीं है कि 'प्रयुत' शब्द १० लाख का वाचक होता है, उतनी जघन्य स्थिति का होना सिद्धान्त के विरुद्ध है। 'अयुत' का अर्थ १० हजार होता है, इसलिए उसी का प्रयोग ठीक जान पड़ता है।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्र में चौथा अध्याय पूर्ण हुआ।'

पाँचवाँ अध्याय

पंचास्तिकाया:।।१।।

'पाँच अस्तिकाय हैं।'

यहाँ अस्तिकाय के लिए पाँच की संख्या का निर्देश करने से आगमकथित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ऐसे पाँच द्रव्यों का संग्रह किया गया है। इनकी अस्तित्व और बहुप्रदेशत्व गुणों के कारण 'अस्तिकाय' संज्ञा है। उमास्वाति ने इनका संग्रह 'अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गला:' और 'जीवाश्च' इन दो सूत्रों (नं. १, ३) में किया है।

नित्यावस्थिता:।।२।।

'(पाँचों अस्तिकाय) नित्य हैं और अवस्थित है।'

ये पाँचों द्रव्य अपने सामान्य–विशेषरूप को कभी छोड़ते नहीं, इसलिए नित्य हैं और अस्तिकायरूप से अपन पाँच की संख्या का भी कभी त्याग नहीं करते– चार या छह आदि रूप नहीं होते– इसलिए अवस्थित हैं। उमास्वाति का **'नित्यावस्थितान्यरूपाणि'** सूत्र इस सूत्र के साथ मिलता–जुलता है।

रूपिण: पुद्गला:।।३।।

'पुद्गल रूपी होते हैं।'

पंचास्तिकायरूप द्रव्यों में से पुद्गलों को रूपी बतलाने का फलितार्थ यह होता है कि जीव, धर्म, अधर्म और आकाश ये चार द्रव्य अरूपी हैं– स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से रहित

अमूर्तिक हैं यह सूत्र और उमास्वाति का चौथा सूत्र अक्षर से एक ही हैं।

धर्मादेरक्रियत्वम्।।४।।

'धर्म आदि के अक्रियत्व है।'

यहाँ 'आदि' शब्द से अधर्म और आकाश का संग्रह किया गया है; क्योंकि पंचास्तिकाय में धर्म द्रव्य के बाद ये ही आते हैं। ये तीनों द्रव्य क्रियाहीन हैं। जब ये क्रियाहीन हैं, तब शेष जीव और पुद्गल द्रव्य क्रियावान् हैं, यह सूत्र–सामर्थ्य से स्वयं अभिव्यक्त हो जाता है। उमास्वाति के 'निष्क्रियाणि च' सूत्र का और इसका एक ही आशय है।

जीवादेर्लोकाकाशेऽवगाहः।।५।।

'जीवादिक का लोकाकाश में अवगाह है।'

यहाँ 'आदि' शब्द से पुद्गल, धर्म और अधर्म का संग्रह किया गया है– चारों द्रव्यों का आधार लोकाकाश है। आकाश स्वप्रतिष्ठित अपने ही आधार पर स्थित है, इसलिए उसका अन्य आधार नहीं है। यह सूत्र और उमास्वाति का १२वाँ 'लोकाकाशेऽवगाहः' सूत्र प्रायः एक ही हैं।

सत्त्वं द्रव्यलक्षणम्।।६।।

उत्पादादियुक्तं सत्।।७।।

'द्रव्य का लक्षण सत्त्व (सत् का भाव) है।'

'उत्पाद आदि (व्यय, घ्रौव्य) से जो युक्त है, वह सत् है।'

ये सूत्र उमास्वाति के 'सद्द्रव्यलक्षणं' और 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्' इन सूत्रों के साथ पूर्ण सामंजस्य रखते हैं और एक ही आशय को लिए हुए हैं।

सहक्रमभाविगुणपर्ययवद्द्रव्यम्।।८।।

'द्रव्य सहभावि–गुणों तथा क्रमभावि–पर्यायों वाला होता है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' सूत्र से कुछ विशेषता को लिए हुए है। इसमें गुण का स्वरूप सहभावी और पर्याय का क्रमभावी भी बता दिया है।

कालश्च।।९।।

'काल भी द्रव्य है।'

यह सूत्र और उमास्वाति का ३९ वाँ सूत्र अक्षर से एक हैं।[21]

अनन्तसमयश्च।।१०।।

'(कालद्रव्य) अनन्त समय (पर्याय) वाला है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'सोऽनन्तसमयः' सूत्र के साथ बहुत मिलता–जुलता है और एक ही आशय को लिये हुए है।

गुणानामगुणत्वम्।।११।।

'गुणों के गुणत्व नहीं होता।'

गुण स्वयं निर्गुण होते हैं। गुणों में भी यदि अन्य गुणों की कल्पना की जाय तो वे गुणी, गुणवान् एवं द्रव्य हो जाते हैं, फिर द्रव्य और गुण में कोई विशेषता नहीं रहती और अनवस्था भी आती है। यह सूत्र उमास्वाति के 'द्रव्याश्रयाः' पद का आशय इससे पूर्व ८वें सूत्र में 'सहभावी' विशेषण के द्वारा व्यक्त कर दिया गया है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे पंचमोऽध्यायः।।५।।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र–विरचिते तत्त्वार्थसूत्र में पाँचावाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

छठा अध्याय

---

[21] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में इसके अन्तर 'इत्येके' जुड़ा हुआ है और इसे ३८ नम्बर पर दिया है।

त्रिकरणैः कर्मयोगः।।१।।

'तीन करणों से (मन—वचन—काय से) की जानेवाली क्रिया को योग कहते हैं।'

प्रशस्ताप्रशस्तौ।।२।।

पुण्यपापयोः (हेतू)।।३।।

'योग प्रशस्त अप्रशस्त दो हैं।'

'प्रशस्त योग पुण्य का अप्रशस्त योग पाप का (आस्रव) हेतु है।'

उमास्वाति के 'शुभः पुण्यस्याऽशुभः पापस्य' सूत्र का अथवा श्वे. मान्यता के अनुसार 'शुभः पुण्यस्य' अशुभः पापस्य' ऐसे दो सूत्रों का जो आशय है, वही इन सूत्रों का है।

गुरुनिन्हवादयो ज्ञानदर्शनावरणयोः[२२]।।४।।

'गुरुनिन्हव (गुरु का छिपाना) आदि ज्ञानावरण दर्शनावरण के हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से मात्सर्य, अन्तराय, आसादन, उपघात आदि उन हेतुओं का ग्रहण करना चाहिए, जो आगम में वर्णित हैं और जिनका उमास्वाति ने 'तत्प्रदोषनिन्हव' नाम के सूत्र में उल्लेख किया है।

दुःखव्र[२३] त्यनुकंपाद्या असाता[२४] सातयोः।।५।।

'दुःख आदि असाता के, व्रत्यनुकम्पा आदि साता के हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से असातावेदनीय के आस्रवहेतुओं में शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदवन का और साता वेदनीय के हेतुओं में दान, सराग—संयम, क्षमा, शौचादि का संग्रह किया गया है। उमास्वाति के दो सूत्र नं. ११, १२ का जो आशय है,

---

22 वरणादयः।

23 वृ।

24 द्याः साता।

वही इसका समझना चाहिए। यहाँ सूचना रूप से बहुत ही संक्षिप्त कथन किया गया है।

के[२५]वल्यादिविवादो (द्यवर्णवादो?) दर्शनमोहस्य[२६]।।६।।[२७]

'केवली आदि का विवाद (अवर्णवाद?)— उन्हें झूठे दोष लगाना दर्शन मोह का हेतु है।'

यहाँ 'आदि' शब्द के द्वारा श्रुत, संघ, धर्म और देव के अवर्णवाद का भी संग्रह किया गया है। यह सूत्र उसी आशय को लिए हुए जान पड़ता है, जो उमास्वाति के **'केवलश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य'** सूत्र का है।

कषायजनिततीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।७।।

'कषाय से उत्पन्न हुआ तीव्र परिणाम चारित्रमोह का हेतु है।'

यह सूत्र और उमास्वाति का 'कषायोदयात्तीव्र' नाम का सूत्र प्रायः एक ही हैं— मात्र 'उदयात्' और 'जनित' शब्दों का अन्तर है।

बह्वारंभपरिग्रहाद्या नारकाद्यायुष्कहेतवः।।८।।

'बहुआरम्भ और बहुपरिग्रह आदि नारकादि आयुओं के हेतु हैं।'

इस सूत्र में दो जगह 'आद्य' शब्दा का प्रयोग करके नारक आदि चारों ही गतियों के जीवों का और उनकी आयु के आस्रव—हेतुओं का एकत्र संग्रह किया गया है; परन्तु दूसरी गतियों का एक—एक भी कारण सूचना एवं दूसरे कारणों को ग्रहण करने की प्रेरणारूप से साथ में नहीं दिया है, इससे यह

---

25 कै।

26 श्च।

27 यहाँ मूल पुस्तक में नं. ७ दिया है, जो गलत है; क्योंकि इससे पहिले 'चतुर्तिंशति कामदेवाः' नाम का एक सूत्र पुनः गलती से नं. ६ पर लिखा गया था, जिसे निकाल देने का संकेत किया हुआ है; परन्तु उसे निकालने पर आगे के नम्बरों को बदलना चाहिए था, जिन्हें नहीं बदला। इसलिए इस अध्याय के अगले सब नम्बर ग्रन्थप्रति में एक—एक की वृद्धि को लिए हुए हैं।

सूत्र आवश्यकता से कहीं अधिक संक्षिप्त और अजीब–सा ही जान पड़ता है। यह विषय उमास्वाति ने १५ से २१ तक सात सूत्रों में वर्णित किया है।

योगवक्रताद्या अशुभ[२८]नाम्नः।।९।।

'योग की– मन वचन काय की वक्रता आदि अशुभ नाम के आस्रवहेतु हैं।'

यहाँ 'आद्याः' पद बहुवचनान्त होने से उसके द्वारा उमास्वाति के २२वें सूत्र में निर्दिष्ट एकमात्र विसंवादन (अन्यथाप्रवर्तन)' का ही ग्रहण नहीं किया जा सकता, बल्कि दूसरे कारणों का भी ग्रहण होना चाहिए। उन कारणों में सर्वार्थसिद्धिकार ने मिथ्यादर्शन, पैशून्य, अस्थिरचित्तता, कूटमानतुलाकरण को भी बतलाया है और लिखा है कि सूत्र में प्रयुक्त हुए 'च' शब्द से उनका ग्रहण करना चाहिए।

तद्वैपरीत्यं शुभस्य।।१०।।

'अशुभनाम के आस्रवहेतुओं से विपरीत–योग की सरलता और अनुकूलप्रवर्तनादि– शुभ नाम के आस्रव हेतु हैं।'

उमास्वाति का 'तद्विपरीतं शुभस्य' सूत्र और यह सूत्र दोनों एक ही जैसे हैं।

दर्शनविशुद्धयादिषोडशभावनास्तीर्थंकरत्वस्य।।११।।

'दर्शन–विशुद्धि आदि सोलह भावनाएँ तीर्थंकर नाम के आस्रव की हेतु हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से आगमप्रसिद्धविनयसम्पन्नता आदि उन १५ भावनाओं का संग्रह किया गया है, जिनका उमास्वाति ने अपने २४ वें सूत्र में नामोल्लेखपूर्वक संग्रह किया है।

आत्मविकत्थ[२९]नाद्या नीचैर्गोत्रस्य।।१२।।

आत्मश्लाघा (अपनी प्रशंसा) आदि नीचगोत्र के हेतु हैं।

---

[28] द्याशुभ।

[29] विकथ।

यहाँ 'आदि' शब्द से परनिन्दा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन —ऐसे तीन हेतुओं का संग्रह किया गया जान पड़ता है, जो उमास्वाति के '**परात्मनिन्दाप्रशंसे**' इत्यादि सूत्र में स्पष्टतया उल्लिखित मिलते हैं।

तद्व्यत्ययो महत:।।१३।।

नीच गोत्र के आस्रव हेतुओं से विपरीत आत्मनिन्दादिक— ऊँच गोत्र के आस्रव हेतु हैं।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य' सूत्र के आशय के साथ मिलता—जुलता है।

दानादिविघ्नकरणमंतरायस्य।।१४।।

'दानादि में विघ्न करना अन्तराय कर्म के आस्रव का हेतु है।

यहाँ 'आदि' शब्द से लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य का ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि अन्तरायकर्म के दानान्तराय आदि पाँच ही भेद हैं। इस सूत्र में उमास्वाति के सूत्र से सिर्फ 'दानादि' शब्द अधिक हैं।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे षष्टो[30]ऽध्याय:।।६।।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र—विरचिते तत्त्वार्थसूत्र में छठा अध्याय समाप्त हुआ है।'

सातवाँ अध्याय

हिंसादिपंचविरतिर्व्रतम्।।१।।

'हिंसादिपंचक से विरक्त (निवृत्त) होना व्रत है।'

हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्म और परिग्रह ये पंच पाप कहलाते हैं। इनसे निवृत्त होना ही 'व्रत' है और इसीलिए व्रत के अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह —ऐसे पाँच

---

[30] षष्टिमो।

भेद हैं। यह सूत्र और उमास्वाति का '**हिसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं**' सूत्र दोनों एक ही टाइप और आशय के हैं। उमास्वाति ने प्रसिद्ध पाँचों पापों के नाम दिये हैं, यहाँ हिंसा के साथ शेष का 'आदि' शब्द के द्वारा संग्रह किया गया है।

महाऽणु[31]भेदेन तद्द्विविधम्।।२।।

'वह व्रत (व्रतसमूह) महाव्रत और अणुव्रत के भेद से दो प्रकार का है।'

यह सूत्र उमास्वाति के दूसरे सूत्र 'देशसर्वतोऽणुमहती' के समकक्ष है और उसी आशय को लिए हुए है। इसके और पूर्व सूत्र के अनुसार महाव्रतों तथा अणुव्रतों की संख्या पाँच–पाँच होती है।

तद्दार्ढ्याय भावनाः पंचविंशतिः।।३।।

'उन (व्रतों) की दृढ़ताके लिए पच्चीस भावनाएँ हैं।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच–पंच' सूत्र नं. ३ के समकक्ष है और उसी के आशय को लिए हुए है। वहाँ प्रत्येक व्रत की पाँच–पाँच भावनाएँ बतलाई हैं, तब यहाँ उन सबकी एकत्र संख्या पच्चीस दे दी है। दिगम्बर पाठानुसार उमास्वाति के अगले पाँच सूत्रों में उनके नाम भी दिये हैं, परन्तु यहाँ संख्या के निर्देश से उनका संकेतमात्र किया गया है। श्वेताम्बर सूत्र पाठ में भी ऐसा ही किया गया है– नामोंवाले अगले पाँच सूत्र नहीं दिये।

मैत्र्यादयश्चतस्रः।।४।।

'मैत्री आदि चार भावनाएँ और हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से आगमनिर्दिष्ट प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ नाम की तीन भावनाओं का संग्रह किया गया है। मैत्री–सहित ये ही चार प्रसिद्ध भावनाएँ हैं। उमास्वाति ने '**मैत्रीप्रमोद.**' नामक सूत्र में इन चारों का नाम सहित संग्रह किया है।

---

[31] ऽनु

श्रमणा[३२]नामष्टाविंशतिर्मूलगुणा:[३३] ।।५।।

'श्रमणों के अट्ठाईस मूलगुण हैं।'

इस आशय का कोई सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है। इसमें जैन साधुओं के मूलगुणों की जो २८ संख्या दी है, उसमें मूलाचारादि प्राचीन दिगम्बर ग्रन्थों के कथनानुसार अहिंसादि पंच महाव्रत, ईर्यादि पंच समितियाँ, पाँचों इन्द्रियों का निरोध, सामायिकादि छह आवश्यक क्रियाएँ, अस्नान, भूशयन, केशलोंच, अचेलत्व (नग्नत्व), एक भुक्ति, ऊर्ध्वभुक्ति (खड़े होकर भोजन करना) और अदन्तघर्षण नाम के गुणों का समावेश है।

श्रावकाणामष्टौ।।६।।

'श्रावकों के मूलगुण आठ हैं।'

आठ मूल गुणों के नामों में यद्यपि आचार्यों में कुछ मत–भेद पाया जाता है, जिसके लिए अनुवादक का लिखा हुआ 'जैनाचार्यों का शासन–भेद' नाम का ग्रन्थ देखना चाहिए; परन्तु यहाँ चूँकि व्रती श्रावकों का अधिकार है, इसलिए आठ मूलगुणों में स्वामी समन्तभद्र–प्रतिपादित पाँच अणुव्रतों और मद्य–माँस मधु के त्याग को लेना चाहिए। इस आशय का भी कोई सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है।

शीलसप्तकं च।।७।।

'सात शील भी श्रावकों के गुण हैं।'

सप्त शील के नामों में भी आचार्यों में परस्पर कुछ मतभेद है।[३४] उमास्वाति ने अपने 'दिग्देशानर्थदण्ड' नामक सूत्र में उनके नाम दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोग–परिमाण, अतिथिसंविभाग दिये हैं, जबकि कुन्दकुन्दाचार्य ने चारित्रप्राभृत में देशव्रत का ग्रहण न करके सप्तम स्थान पर 'सल्लेखना' का

---

32 श्रवणा।

33 मूलगुणा।

34 देखो– जैनाचार्यों का शासनभेद, गुणव्रत और शिक्षाव्रत प्रकरण, पृ. ४१ से ६४।

विधान किया है। इसी तरह और भी थोड़ा–थोड़ा मतभेद है। यहाँ सम्भवतः कुन्दकुन्द प्रतिपादित गुणव्रत–शिक्षाव्रतात्मक सप्त शीलों का ही उल्लेख जान पड़ता है; क्योंकि आगे सन्यास (सल्लेखना) का भी कोई अलग विधान न करके १०वें सूत्र में उसके अतीचारों का उल्लेख किया गया है।

शंकाद्याः[३५] सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।।८।।
'शंका आदि सम्यग्दर्शन के अतीचार हैं।'

यहाँ अतीचारों की संख्या का निर्देश न होने से 'आदि' शब्द द्वारा जहाँ उमास्वाति–सूत्र–निर्दिष्ट काँक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा, अन्यदृष्टिसंस्तव इन चार अतीचारों का ग्रहण किया जा सकता है, वहाँ सम्यग्दर्शन के निःशंकित अंग को छोड़कर शेष सात अंगों के प्रतिपक्षभूत काँक्षा, विचिकित्सा, मूढदृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितीकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना नाम के दोषों– अतीचारों का भी ग्रहण किया जा सकता है। सर्वार्थसिद्धि में अष्ट अंगों के प्रतिपक्षभूत आठ अतीचार होने चाहिए, ऐसी शंका भी उठाई गई है और फिर उसका समाधान यह कहकर कर दिया है कि ग्रन्थकार ने व्रत–शीलादिक के भी पाँच–पाँच ही अतीचारों का अपना क्रम रक्खा है, इसलिए सम्यग्दर्शन के शेष अतीचारों का प्रशंसा–संस्तव में अन्तर्भाव कर लेना चाहिए। यहाँ '**शंकाद्याः**' पद पर आठ का अंक दिया है, इससे भी आठ अतीचारों का ही ग्रहण जान पड़ता है।

बंधादयो व्रतानाम्।।९।।
'बंध आदिक व्रतों के अतीचार हैं।'

यहाँ 'व्रतानाम्' पद के द्वारा अहिंसादिक सब व्रतों का और 'बंधादयो' पद में प्रयुक्त 'आदि' शब्द के द्वारा उनके पृथक्–पृथक अतीचारों का संग्रह किया गया है; परन्तु उनकी संख्या का किसी रूप में भी उल्लेख नहीं किया है। यह सूत्र बहुत ही संक्षिप्त–सूचनामात्र है। इसमें उमास्वाति के २५ से ३२ अथवा ३६ नम्बर तक सूत्रों के विषय का समावेश किया जा सकता है।[३६]

---

[35] द्या।

[36] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ के अनुसार ये सूत्र नं. २० से प्रारम्भ होते हैं और ३१ तक हैं।

मित्रस्मृत्याद्याः सं[37]न्यासस्य।।१०।।

'मित्र स्मृति आदि सन्यास (सल्लेखना) के अतीचार हैं।'

यहाँ भी अतीचारों की संख्या का कोई निर्देश नहीं किया। 'आदि' शब्द से सुखानुबन्ध, निदान नाम के अतीचारों का और क्रम—व्यतिक्रम करके यदि ग्रहण किया जाय तो जीविताकाँक्षा तथा मरणाकाँक्षा का भी ग्रहण किया जा सकता है, जिन सब का उमास्वाति के '**जीवितमरणाशंसा**' इत्यादि सूत्र में उल्लेख है।

स्वपरहिताय स्वस्यातिसर्जनं दानम्।।११।।

'अपने और पर के हित के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं' इस सूत्र के समकक्ष है— दोनों का आशय एक ही है। इस सूत्र का '**स्वपरहिताय**' पद उमास्वाति के 'अनुग्रहार्थं' पद से अधिक स्पष्ट जान पड़ता है।

इति प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे सप्तमोऽध्यायः।।७।।

'इसप्रकार प्रभाचन्द्र विरचित तत्त्वार्थसूत्र में सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

आठवाँ अध्याय

मिथ्यादर्शनादयो बंधहेतवः।।१।।

'मिथ्यादर्शन आदि बन्ध के कारण हैं।

यहाँ 'आदि' शब्द से आगम—कथित उन अविरत, प्रमाद, कषाय और योग नाम के बन्धहेतुओं का संग्रह किया

---

[37] द्या स।

गया है, जिनका उमास्वाति ने भी अपने इसी अध्याय के पहले सूत्र में नाम निर्देश पूर्वक संग्रह किया है।

चतुर्धा बन्धाः।।२।।

'बन्ध चार प्रकार का होता है।'

यहाँ चार की संख्या का निर्देश करने से आगमनिर्दिष्ट प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश नाम के चारों बन्धों का संग्रह किया गया है और इसलिए यह सूत्र और उमास्वाति का '**प्रकृतिस्थितित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः**' सूत्र दोनों एक ही आशय को लिए हुए हैं।

मूलप्रकृतयोऽष्टौ।।३।।

'मूल प्रकृतियाँ आठ हैं।'

आगम–कथित कर्मों की मूल आठ प्रकृतियाँ– ज्ञानावरण, दर्शनावरण वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम और गोत्र हैं और इसलिए इस सूत्र का वही आशय है, जो उमास्वाति के 'आद्यो ज्ञानदर्शनावरण' इत्यादि सूत्र का है।

उत्तरा अष्ट[३८]चत्वारिंशच्छतम्[३९]।।४।।

'उत्तर प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस हैं।'

ज्ञानावरणी की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम की ९३, गोत्र की २ और अन्तराय की ५ प्रकृतियाँ मिलकर उत्तर प्रकृतियों की संख्या १४८ होती है। उमास्वाति ने मूलप्रकृतियों के नामाऽनन्तर उत्तरप्रकृतियों की संख्या का निर्देशक जो सूत्र 'पंचनवद्व्यष्टाविंशति' इत्यादि दिया है, उसमें नाम कर्म की उत्तर प्रकृतियों की संख्या ४२ बतलाते हुए उत्तरप्रकृतियों की कुल संख्या ९७ दी है। नाम कर्म की उत्तरोत्तर प्रकृतियों को भी शामिल करके उत्तर प्रकृतियों की कुल संख्या १४८ हो जाती है। उन्हीं सब उत्तर–प्रकृतियों का यहाँ निर्देश है।

---

[38] उत्तराष्ट।

[39] त्।

ज्ञानावरणादित्रयस्यांतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः पराध्या (परा?) स्थितिः।।५।।

'ज्ञानावरणादि तीन कर्मों की और अन्तराय की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोडाकोडी सागर की है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'आदितग्तिसृणामन्तरायस्य' इत्यादि सूत्र के समकक्ष है और उसी आशय को लिए हुए है।

मोहनीयस्य सप्ततिः।।६।।

'मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागर की है।'

उमास्वाति के सूत्र में 'सप्ततिः' पद पहले ओर 'मोहनीयस्य' पद बाद में है।

त्रयस्त्रिंशदे[४०]वायुषः।।७।।

'आयुकर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस ही सागर की है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः' सूत्र के समान है। इसमें प्रयुक्त हुआ 'एव' शब्द कोटि–कोटि के निवृत्यर्थ जान पड़ता है।

नामगोत्रयोर्विंशतिः।।८।।

'नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडा–कोडी सागर की है।

यह सूत्र उमास्वाति के 'विंशतिर्नामगोत्रयोः' सूत्र के बिल्कुल समकक्ष है; परन्तु यह सूत्र नम्बर ७ पर होना चाहिए; क्योंकि ८ वें नम्बर पर होने के कारण इसमें वर्णित स्थिति पूर्व सूत्र के सम्बन्धानुसार २० सागर की हो जाती है– २० कोडाकोडी सागर की नहीं रहती और यह सिद्धान्त–शास्त्र के विरुद्ध है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

---

[40] दे।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्र विरचित तत्त्वार्थसूत्र में आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

नवाँ अध्याय

गुप्त्यादिना संवरः।।१।।

'गुप्ति आदि के द्वारा संवर (कर्मास्रव का निरोध) होता है।'

यहाँ 'आदि' शब्द से समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र नाम के आगमकथित संवर–भेदों का उनके उपभेदों–सहित संग्रह किया गया है और इसलिए इस सूत्र का विषय बहुत बड़ा है। उमास्वाति का 'स गुप्ति–समिति–धर्मानुप्रेक्षा–परीषहजय–चरित्रैः' नाम का सूत्र इसी आशय का स्पष्टतया व्यंजक है। उनके तत्त्वार्थसूत्र में गुप्ति आदि के उपभेदों का भी अलग–अलग सूत्रों में निर्देश किया गया है, जबकि यहाँ वैसा कुछ भी नहीं है।

तपसा निर्जराऽपि।।२।।

'तपसे निर्जरा भी होता है।'

यह सूत्र और उमास्वाति का दूसरा सूत्र दोनों प्रायः एक ही हैं– वहाँ 'च' शब्द का प्रयोग है, तब यहाँ उसके स्थान पर 'अपि' शब्द का प्रयोग है। अर्थ में कोई भेद नहीं। तप से संवर और निर्जरा दोनों ही होते हैं, यह 'च' और 'अपि' शब्दों के प्रयोग का अभिप्राय है।'

उत्तमसंहननस्यान्तर्मुहूर्तावस्थायि ध्यानम्।।३।।

'उत्तम संहनन वाले के ध्यान अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त अवस्थित रहने वाला होता है।'

ध्यान अन्तरंग तप का एक भेद है, वह ज्यादा से ज्यादा अन्तर्मुहूर्त एक मुहूर्त पर्यन्त ही स्थिर रहने वाला होता है और वह भी उत्तम संहनन वाले के। हीन संहनन वाले का

ध्यान किसी भी विषय पर एक साथ इतनी देर तक नहीं ठहर सकता। उमास्वाति का **'उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात्'** यह २७वाँ[41] सूत्र भी इसी आशय का है। विशेषता इतनी ही है कि उमास्वाति ने 'एकाग्रचिन्तानिरोधः' पद के द्वारा ध्यान का स्वरूप भी साथ में बतला दिया है।

तच्चतुर्विधम्।।४।।

'वह ध्यान चार प्रकार का है।'

यहाँ चार की संख्या का निर्देश करने से ध्यान के आगम प्रसिद्ध आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल ऐसे चारों भेदों का संग्रह किया गया है। उमास्वाति का इसके स्थान पर **'आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि'** सूत्र है, जो ध्यान के नामों के स्पष्ट उल्लेख को लिए हुए है।

आद्ये संसारकारणे।।५।।

परे मोक्षस्य।।६।।

'पहले दो (आर्त्त, रौद्र) ध्यान संसार के कारण हैं।'

'दूसरे दो (धर्म्य, शुक्ल) ध्यान मोक्ष के कारण हैं।'

उमास्वाति ने इन दोनों सूत्रों के स्थान पर 'परे मोक्षहेतू' नाम का एक ही सूत्र रक्खा है और उसके द्वारा दूसरे दो ध्यानों को मोक्ष का हेतु बतलाया है, जिसकी सामर्थ्य से पहले दो ध्यान स्वतः ही संसार के हेतु हो जाते हैं। यहाँ स्पष्टतया संसार और मोक्ष के हेतुओं का अलग–अलग निर्देश कर दिया है।

पुलाकाद्याः पंच निर्ग्रन्थाः।।७।।

'पुलाक आदि पाँच निर्ग्रन्थ हैं।'

यहाँ पाँच की संख्या का निर्देशपूर्वक 'आदि' शब्द से आगम प्रसिद्ध बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक नाम के चार निर्ग्रन्थों का संग्रह किया गया है। उमास्वाति ने

---

[41] श्वेताम्बरीय सूत्रपाठ में 'ध्यानम्' तक के अंश को २७वाँ सूत्र और 'आमुहूर्तात्' को २८वाँ सूत्र बतलाया है।

'पुलाक–बकुश–कुशील–निर्ग्रन्थ–स्नातका निर्ग्रन्था:' इस सूत्र में पाँचों का स्पष्ट नामोल्लेख किया है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचिते तत्त्वार्थसूत्रे
नवमोऽध्याय:।।९।।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्रविरचित तत्त्वार्थसूत्र में ९वाँ अध्याय समाप्त हुआ।'

दसवाँ अध्याय

मोहक्षये घातित्रयापनोदात्केवलम्।।१।।

'मोहनीय कर्म का क्षय होने पर तीन घातिया कर्मों के ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के विनाश से केवलज्ञान होता है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्' इस प्रथम सूत्र के बिल्कुल समकक्ष है। दोनों एक ही आशय को लिए हुए हैं।

अशेषकर्मक्षये मोक्ष:।।२।।

'सब कर्मों का क्षय होने पर मोक्ष होता है।'

इस सूत्र के स्थान पर उमास्वाति का दूसरा सूत्र 'बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष:[४२]' है, जिसमें 'बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां' यह कारण–निर्देशात्मक पद अधिक है और उसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि अशेष कर्मों का विनाश बन्ध के हेतुओं के अभाव (संवर) और संचित कर्मों की निर्जरा से होता है।

तत ऊर्ध्व गच्छत्या[४३] लोकांतात्।।३।।

'तत्पश्चात् (मोक्ष के अनन्तर) मुक्त जीव लोक के अन्त तक गमन करता है।'

---

42 श्वेताम्बर सूत्रपाठ में यह सूत्र दो सूत्रों में विभक्त है। इसका पहला पद दूसरा सूत्र और शेष दो पद 'विप्रमोक्षो' के स्थान पर 'क्षयो' पद की तब्दीली के साथ तीसरा सूत्र है।

43 न्त्या।

यह सूत्र उमास्वाति के पाँचवें सूत्र 'तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्' के बिल्कुल समकक्ष तथा एकार्थक है और इसमें तीन अक्षर कम हैं।

ततो न गमनं धर्मास्तिकायाभावात्[४४]।।४।।

'लोक के अन्तिम भाग के आगे—आलोक में गमन नहीं है; क्योंकि वहाँ धर्मास्तिकाय का अभाव है।'

यह सूत्र उमास्वाति के 'धर्मास्तिकायाभावात्' सूत्र के समकक्ष है— मात्र 'ततो न गमनं' पदों की विशेषता को लिए हुए है, जो अर्थ को स्पष्ट करते हैं।

क्षेत्रादिसिद्धभेदाः साध्याः।।५।।

'क्षेत्र आदि के द्वारा सिद्धों के भेद साध्य हैं— विकल्पनीय हैं।'

यहाँ 'आदि' शब्द से उन आगमोदित काल, गति, लिंग, तीर्थ, प्रत्येकबोधित, बुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व भेदों का संग्रह किया गया है, जिनके द्वारा सिद्धों में नयविवक्षा से विकल्प किया जाता है। उन्हें भेदरूप माना जाता है और जिनका उल्लेख उमास्वाति ने अपने 'क्षेत्रकालगतिकृबहुत्वतः साध्याः' सूत्र में किया है।

इति श्रीबृहत्प्रभाचंद्राचार्य विरचिते[४५] तत्त्वार्थसारे सूत्रे दशमोऽध्यायः।।१०।।

इति जिनकल्पिसूत्रं[४६]समाप्तम्।।

'इसप्रकार श्रीबृहत्प्रभाचन्द्राचार्य—विरचित तत्त्वार्थसार सूत्र में दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।'

'इस प्रकार जिनकल्पी सूत्र समाप्त हुआ।'

---

44 कायात्वात्।

45 बिबिरचिते।

46 जिनकल्पीसूत्र